शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए राष्ट्र को भाषा की दरकार है !

कुछ बातें प्रकट होने पर भी हमारे ध्यान में नहीं आतीं और हम हम उनकी उपेक्षा करते जाते हैं और एक समय आता है जब मन मसोस कर रह जीते हैं कि काश पहले सोचा होता. भाषा के साथ ही ऐसा ही कुछ होता है. भाषा में दैनंदिन संस्कृति का स्पंदन और प्रवाह होता है. वह जीवन की जाने कितनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है. उसके अभाव की कल्पना बड़ी डरावनी है. भाषा की मृत्यु के साथ एक समुदाय की पूरी की पूरी विरासत ही लुप्त होने लगती है. कहना न होगा कि जीवन को समृद्ध करने वाली हमारी सभी महत्वपूर्ण उपलब्धियां जैसे-कला, पर्व, रीति-रिवाज आदि सभी जिनसे किसी समाज की पहचान बनती है उन सबका मूल आधार भाषा ही होती है. किसी भाषा का व्यवहार में बना रहना उस समाज की जीवंतता और सृजनात्मकता को संभव करता है. आज के बदलते माहौल में अधिसंख्य भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी को लेकर भी अब इस तरह के सवाल खड़े होने लगे हैं कि उसका सामाजिक स्वास्थ्य कैसा है और किस तरह का भविष्य आने वाला है.

हिंदी के बहुत से रूप हैं जो उसके साहित्य में परिलक्षित होते हैं पर उसकी जनसत्ता कितनी सुदृढ है यह इस बात पर निर्भर करती है कि जीवन के विविध पक्षों में उसका उपयोग कहां, कितना, किस मात्रा में और किन परिणामों के साथ किया जा रहा है. ये प्रश्न सिर्फ हिंदी भाषा से ही नहीं भारत के समाज से और उसकी जीवन यात्रा से और हमारे लोकतंत्र की उपलब्धि से भी जुड़े हुए हैं. वह समर्थ हो सके इसके लिए जरूरी है कि हर स्तर पर उसका समुचित उपयोग हो. वह एक पीढी से दूसरे तक पहुंचे, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढे, हमारे विभिन्न कार्यों का माध्यम बने, विभिन्न कार्यों के लिए उसका दस्तावेजीकरण हो, और उसे राजकीय समर्थन भी प्राप्त हो.

वास्तविकता यही है कि जिस हिंदी भाषा को आज पचास करोड़ लोग मातृ भाषा के रूप में उपयोग करते हैं उसकी व्यावहारिक जीवन के तमाम क्षेत्रों में उपयोग असंतोषजनक है. आजादी पाने के बाद वह सब न न हो सका जो होना चाहिए था. लगभग सात दशकों से हिंदी भाषा को इंतजार है कि उसे व्यावहारिक स्तर पर पूर्ण राजभाषा का दर्जा दे दिया जाय और देश में स्वदेशी भाषा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में संचार और संवाद का माध्यम बने. संविधान ने अनुछेद 350 और 351 के तहत भारत संघ की राज भाषा का दर्जा विधिक रूप से दिया है. संविधान के में हिंदी के लिए दृढसंकल्प के उल्लेख के बावजूद और हिंदी सेवी तमाम सरकारी संस्थानों और उपक्रमों के बावजूद हिंदी को लेकर हम ज्यादा आगे नहीं बढ सके हैं.

आज की स्थिति यह है कि वास्तव में शिक्षित माने अंग्रेजीदां होना ही है. सिर्फ हिंदी जानना अनपढतुल्य ही माना जाता है. हिंदी के ज्ञान पर कोई गर्व नहीं होता है पर अंग्रेजी की दासता और सम्मोहन अटूट है. अंग्रेजी सुधारने के विज्ञापन ब्रिटेन ही नहीं भारत के तमाम संस्थाएं कर रही हैं और खूब चल भी रही हैं. हिंदी क्षेत्र समेत अनेक प्रांतीय सरकारें अंग्रेजी स्कूल खोलने के लिए कटिबद्ध हैं. भाषाई साम्राज्यवाद का यह जबर्दस्त उदाहरण है. ज्ञान के क्षेत्र में जातिवाद है और अंग्रेजी उच्च जाति

की श्रेणी में है और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाएं अस्पृश्य बनी हुई हैं. उनके लिए या तो पूरी निषेधाज्ञा है या फिर ' विना अनुमति के प्रवेश वर्जित है' की तख्ती टंगी हुई है. इस करुण दृश्य को पचाना कठिन है क्योंकि वह सभ्यता के आगामे विकट संकट प्रस्तुत कर रहा है. आज बाजार का युग है और जिसकी मांग है वही बचेगा. मांग अंग्रेजी की ही बनी हुई है.

यह विचारणीय है कि बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में राजा राम मोहन राय, केशव चंद्र सेन, दयानंद सरस्वती बंकिम चंद्र चटर्जी भूदेव मुखर्जी जैसे शुद्ध अहिंदीभाषी लोगों हिंदी को राष्ट्रीय संवाद का माध्यम बनाने की जोरदार वकालत की थी. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1936 में वर्धा में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की जिसमें राजेंद्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, जमना लाल बजाज, बाबा राघव दास, माखन लाल चतुर्वेदी और वियोगी हरि जैसे लोग शामिल थे. उन्होने अपने पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति का काम सौंपा. यह सब हिंदी के प्रति राष्ट्रीय भावना और समाज और संस्कृति के उत्थान के प्रति समर्पण को बताता है.

'हिंद स्वराज' में गांधी जी स्पष्ट कहते हैं कि ' हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हिंदी ही होनी चाहिए' . इसके पक्ष में वह कारण भी गिनाते हैं कि राष्ट्रभाषा वह भाषा हो जो सीखने में आसान हो , सबके लिए काम काज कर पाने संभावना हो, सारे देश के लिए जिसे सीखना सरल हो, अधिकांश लोगों की भाषा हो. विचार कर वह हिंदी को सही पाते हैं और अंग्रेजी को इसके लिए उपयुक्त नहीं पाते हैं . उनके विचार में अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती. वह अंग्रेजी मोह को स्वराज्य लिए घातक बताते हैं. उनके विचार में ' अंग्रेजी की शिक्षा गुलामी में ढलने जैसा है' . वे तो यहां तक कहते हैं कि ' हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं. राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी हम पर पड़ेगी' . वे अंग्रेजी से से मुक्ति को स्वराज्य की लड़ाई का एक हिस्सा मानते थे . वे मानते हैं कि सभी हिंदुस्तानियों को हिंदी का ज्ञान होना चाहिए . उनकी हिंदी व्यापक है और उसे नागरी या फारसी में लिखा जाता है. पर देव नागरी लिपि को वह सही ठहराते हैं.

गांधी जी मानते हैं कि हिंदी का फैलाव ज्यादा है. वह मीठी , नम्र और ओजस्वी भाषा है. वे अपना अनुभव साझा करते हुए कहते हैं कि ' मद्रास हो या मुम्बई भारत में मुझे हर जगह हिंदुस्तानी बोलने वाले मिल गए' . हर तबके के लोग यहां तक कि मजदूर , साधु, सन्यासी सभी हिंदी का उपयोग करते हैं. अत : हिंदी ही शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है. उसे आसानी से सीखा जा सकता है. यंग इंडिया में में वह लिखते हैं कि यह बात शायद ही कोई मानता हो कि दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले सभी तमिल-तेलुगु भाषी लोग हिंदी में खूब अच्छी तरह बातचीत कर सकते हैं . वे अंग्रेजी के प्रश्रय को को ' गुलामी और घोर पतन का चिह्न' कहते हैं . काशी हिंदू विश्व विद्यालय में बोलते हुए गांधी जी ने कहा था :

' जरा सोच कर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ करने में हमारे बच्चों को कितना वजन पड़ता है. पूना के कुछ प्रोफेसरों से मेरी बात हुई , उन्होने बताया कि चूंकि हम भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेजी के मार्फत ज्ञान संपादित करना पड़ता है , इस्लिए उसे अपने बेशकीमती वर्षों में से कम से कम छह वर्ष अधिक जाना पड़ता, श्रम और संसाधन का घोर अपव्यय होता है. 1946 में ' हरिजन' में गांधी जी लिखते हैं कि ' यह हमारी मानसिक दासता है कि हम समझते हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा

काम नहीं चल सकता . मैं इस पराजय की भावना वाले विचार को कभी स्वीकार नहीं कर सकता' अभाव है. आज वैश्विक ज्ञान के बाजार में हम हाशिए पर हैं और शिक्षा में सृजनात्मकता का बेहद अभाव बना हुआ है. अपनी भाषा और संस्कृति को खोते हुए हम वैचारिक गुलामी की ओर ही बढते हैं.

हिंदी साहित्य सम्मेलन इंदौर के मार्च 1918 के अधिवेशन में बोलते हुए गांधी जी ने दो टूक शब्दों में आहवान किया था : ' पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है , और दूसरी माता (मातृभाषा) से शुद्ध दूध मिल सकता है. बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असंभव है . पर जो अंधा है , वह देख नहीं सकता . गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेडियां किस तरह तोड़े . पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं . हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूबी रहती है . आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें . हिंदी सब समझते हैं . इसे राष्ट्रभाषा बना कर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए' .

स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हिंदी के साथ हीलाहवाली करते हुए हम अंग्रेजी को ही तरजीह देते रहे . ऐसा शिक्षित वर्ग तैयार करते रहे जिसका शेष देश वासियों से सम्पर्क ही घटता गया और जिसका संस्कृति का स्वाद देश से परे वैश्विक होने लगा . हम मैकाले के तिरस्कार से भी कुछ कदम आगे ही बढ गए. देशी भाषा और संस्कृति का अनादर जारी है. गांधी जी के शब्दों में ' भाषा माता के समान है . माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए वह हममें नहीं है' . मातृभाषा से मातृवत स्नेह से साहित्य , शिक्षा , संस्कृति , कला और नागरिक जीवन सभी कुछ गहनता और गहराई से जुड़ा होता है. इस वर्ष महात्मा गांधी का विशेष स्मरण किया जा रहा है . उनके भाषाई सपने पर भी सरकार और समाज सबको विचार करना चाहिए. अब जब नई शिक्षा शिक्षानीति को अंजाम दिया जा रहा है यह आवश्यक होगा कि देश को उसकी भाषा में शिक्षा दी जाय.

गिरीश्वर मिश्र Girishwar Misra, Ph.D. FNA Psy,Special Issue Editor Psychological Studies (Springer), Former National Fellow (ICSSR),
Ex Vice Chancellor,Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,Wardha (Mahaaraashtra), Ex Head & Professor, Dept of Psychology, University of Delhi
Residence :Tower -1 , Flat No 307, Parshvanath Majestic Floors,18A, Vaibhav Khand, Indirapuram, Ghaziabad-201014 (U.P.), Mobile- +91 9922399666,https://mindandlife.home.blog

साभार : vashvikhindisammelan.com